सर्वव्यापक ईश्वर की एकरसता और क्रियाशीलता : शंकाओं का समाधान ढूँढने का विनम्र प्रयास

-- भावेश मेरजा

वेदों तथा महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा प्रतिपादित ईश्वर का स्वरूप अत्यंत विशिष्ट है। वेदों के अनुसार ईश्वर एक है, निराकार है, सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, न्यायकारी है और अपने स्वरूप में नित्य एकरस तथा अपरिवर्तनशील है। स्वामी दयानंद द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज भी इसी वैदिक सिद्धांत को स्वीकार करता है, जैसा कि उसके द्वितीय नियम में लिखा गया है।

किन्तु जब कोई व्यक्ति ईश्वर के सर्वव्यापकत्व और उसकी क्रियाशीलता पर विचार करता है, तो उसके मन में कुछ शंकाएं उत्पन्न हो सकती हैं। विशेषतः यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि ईश्वर संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है और एक ही समय में असंख्य कार्य कर रहा है, तो क्या वह विभिन्न स्थानों पर अगल-अलग रूपों में कार्य नहीं कर रहा होगा? यदि ऐसा है, तो फिर उसे एकरस, अखंड और अपरिवर्तनशील कैसे माना जा सकता है?

वर्तमान में स्वामी दयानंद तथा आर्य समाज के कुछ अंध आलोचक और निंदक भी इन्हीं मुद्दों को सोशियल मीडिया पर निरन्तर उठाकर लोगों को भ्रमित करने में प्रवृत्त दिखाई देते हैं।

इस लेख में हम ऐसी कुछ शंकाओं पर विचार करेंगे और वैदिक तथा आर्यसमाजी दृष्टिकोण से उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। यह विषय वास्तव में वैदिक दर्शन के अत्यंत सूक्ष्म प्रश्नों में से एक है। सर्वव्यापक, निराकार, चेतन और अपरिवर्तनशील ईश्वर की अवधारणा को समझने में प्रायः लोग अनजाने में ईश्वर पर भौतिक वस्तुओं के नियम आरोपित कर देते हैं। तब ऐसी शंकाएँ स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती हैं। दर्शन का कार्य इन्हीं शंकाओं का तर्कसंगत समाधान प्रस्तुत करना है। स्वामी दयानंद के सत्यार्थ प्रकाश और वैदिक सिद्धांतों के आलोक में इन शंकाओं का ऐसा तार्किक समाधान मिलता है, जो विज्ञान और अध्यात्म दोनों की कसौटी पर खरा उतरता है।

स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में एक प्रश्नोत्तर लिखा है :

(प्रश्न) : जब वह (परमेश्वर) क्रिया करता होगा तब अन्तवाली क्रिया होती होगी वा अनंत?

(उत्तर) : जितने देश काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही देश काल में क्रिया करता है – न अधिक न न्यून; क्योंकि वह विद्वान् है।

इसी शंका-समाधान के माध्यम से स्वामी जी की उपरोक्त बात का रहस्य समझने में भी कुछ सहायता प्राप्त होगी।

यजुर्वेद (36.32) में परमात्मा के लिए कहा गया है – **"यतोयतः समीहसे..."** अर्थात् - हे भगवन् ईश्वर! आप जिस-जिस स्थान से सम्यक् चेष्टा करते हो..." इससे यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर इस सृष्टि में विभिन्न स्थानों पर कार्य करता है।

पहली शंका :

यदि ईश्वर किसी स्थान विशेष पर कार्य करता है, तो क्या वहां का ईश्वर अन्य स्थानों के ईश्वर से भिन्न नहीं होगा? मान लीजिए किसी स्त्री के गर्भ में शिशु के शरीर का निर्माण और पोषण हो रहा है। यदि ईश्वर इस प्रक्रिया का नियमन कर रहा है, तो उस समय वह उस स्थान पर सक्रिय है। दूसरी ओर, ब्रह्मांड के अन्य स्थानों पर भी अनेक घटनाएं घट रही हैं। प्रश्न यह है कि जिस स्थान पर ईश्वर कार्य कर रहा है और जिन स्थानों पर वह उस प्रकार का कार्य नहीं कर रहा, वहां स्थित ईश्वर में कुछ न कुछ भेद तो मानना पड़ेगा। यदि भेद मान लिया जाए, तो फिर ईश्वर की एकरूपता और अखंडता कैसे बनी रहेगी?

पहली शंका का समाधान :

यह शंका मुख्यतः ईश्वर की तुलना किसी भौतिक वस्तु से करने के कारण उत्पन्न होती है।

सर्वव्यापकता का स्वरूप : ईश्वर के टुकड़े नहीं होते - सबसे पहली बात जो समझने योग्य है, वह यह कि ईश्वर 'अखंड' और 'विभु' (सर्वव्यापक) है। जो वस्तु साकार होती है (जैसे मनुष्य का शरीर, पानी, या हवा), उसके टुकड़े हो सकते हैं और वह अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग रूपों में दिखाई दे सकती है। परंतु ईश्वर निराकार और आकाश (Eternal, Uncreated, Infinite Space) की तरह सर्वव्यापक है। इसे इसी आकाश के उदाहरण से समझते हैं - इस समय दिल्ली में भी आकाश है और मुंबई में भी। दिल्ली के आकाश में एक हवाई जहाज उड़ रहा है और मुंबई के आकाश में वर्षा हो रही है। दो अलग-अलग स्थानों पर दो अलग-अलग क्रियाएं हो रही हैं, और दोनों क्रियाएं आकाश के भीतर ही हो रही हैं। परंतु क्या इस कारण दिल्ली का आकाश और मुंबई का आकाश अलग-अलग हो गए? क्या आकाश के टुकड़े हो गए? नहीं। आकाश एक ही और अखंड रहता है, भले ही उसमें होने वाली क्रियाएं अगणित और विविध हों।

ठीक इसी प्रकार, ईश्वर अपनी सर्वव्यापकता के कारण संपूर्ण ब्रह्मांड में एक समान रूप से भरा हुआ है। जब वह एक स्थान पर शिशु का निर्माण करता है और उसी क्षण दूसरे स्थान पर किसी की मृत्यु की व्यवस्था करता है, तो वह खिलाड़ी की तरह दौड़-भाग नहीं कर रहा है, बल्कि वह दोनों स्थानों पर पहले से ही पूरी तरह विद्यमान है। स्थान और कार्य बदलने से ईश्वर का स्वरूप नहीं बदलता। इसलिए वह सदा एकरस ही रहता है।

जब कोई मनुष्य किसी वस्तु पर कार्य करता है, तो उसके शरीर का कोई विशेष भाग उस कार्य में संलग्न होता है। उदाहरणार्थ, यदि वह हाथ से कोई वस्तु उठाता है, तो हाथ सक्रिय होता है, पैर नहीं। इसलिए मनुष्य के विषय में ऐसी स्थिति में यह कहना अर्थपूर्ण होता है कि उसका एक भाग कार्य कर रहा है और दूसरा नहीं। किन्तु वैदिक मत के अनुसार ईश्वर निराकार और निरवयव है। उसमें हाथ, पैर, आंख, मस्तिष्क अथवा अन्य कोई भौतिक अंग नहीं हैं। इसलिए उसके विषय में “यह भाग कार्य कर रहा है और वह भाग नहीं कर रहा” - जैसी कल्पना लागू ही नहीं होती। भेद तभी माना जा सकता है जब किसी सत्ता में वास्तविक भाग हों। परन्तु ईश्वर को तो अविभाज्य और अखंड माना गया है। अतः विभिन्न स्थानों पर विभिन्न घटनाओं का होना ईश्वर के भीतर किसी प्रकार का विभाजन सिद्ध नहीं करता।

दूसरी शंका :

जब ईश्वर किसी जड़ पदार्थ की रचना या संचालन के लिए किसी वस्तु पर बल लगाता है, तो बल की दिशा के कारण क्या ईश्वर के स्वरूप में कोई खिंचाव, विस्थापन या 'खिसकना' नहीं होता? हमारे अनुभव में जब भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु को धक्का देता है या खींचता है, तो उसके शरीर पर भी प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन का गति-विज्ञान भी यही बताता है कि प्रत्येक क्रिया की समान और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। इस आधार पर प्रश्न उठ सकता है कि यदि ईश्वर किसी पदार्थ पर सृष्टि, पालन अथवा अन्य किसी प्रकार की व्यवस्था के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, तो क्या वह स्वयं भी किसी दिशा में प्रभावित नहीं होगा? यदि होगा, तो उसमें परिवर्तन मानना पड़ेगा।

दूसरी शंका का समाधान :

यह शंका ईश्वर को एक 'भौतिक या शारीरिक बल' (Physical Force) लगाने वाली सत्ता मानने के कारण पैदा होती है। परन्तु यह तर्क केवल भौतिक पिंडों पर लागू होता है। ईश्वर कोई भौतिक वस्तु नहीं है जो किसी स्थान को घेरती हो अथवा जिसका कोई भार, आयतन या आकृति हो। वह निराकार चेतन सत्ता है। वेदों और स्वामी दयानंद के अनुसार ईश्वर का कार्य संसार का नियमन करना है। ईश्वर चेतन है। ईश्वर का बल भौतिक हाथों या पैरों का बल नहीं है, बल्कि उसका बल 'ज्ञान' और 'ईक्षण' (इच्छा - सत्य-संकल्प) का बल है। आइए, इसे वैज्ञानिक और व्यावहारिक उदाहरणों से समझने का प्रयास करते हैं -

1. **चुंबक (Magnet) का उदाहरण :** एक बड़ा चुंबक अपने चारों ओर एक अदृश्य चुंबकीय क्षेत्र (Magnetic Field) बनाता है। यदि आप उस क्षेत्र में बाईं ओर एक लोहे का टुकड़ा रखें, तो वह बाईं ओर खिंचेगा। यदि दाईं ओर रखें, तो वह दाईं ओर खिंचेगा। चुंबक का बल अलग-अलग दिशाओं में काम कर रहा है, लेकिन उस बल को लगाने के लिए चुंबक खुद अपनी जगह से नहीं खिसकता, न ही चुंबक के भीतर कोई खिंचाव आता है। जब एक जड़ चुंबक का क्षेत्र बिना हिले-डुले काम कर सकता है, तो अनंत चेतन ईश्वर का सामर्थ्य तो इससे कहीं सूक्ष्म है।

2. **हमारी अपनी आत्मा :** जब हम अपने मन से एक ही समय में अपनी दाईं आंख को बंद करने और बाएं हाथ की उंगली को हिलाने का संकल्प करते हैं, तो हमारी आत्मा या चेतन शक्ति दो **अलग-अलग** दिशाओं में कार्य कर रही होती है। परंतु क्या इस कारण हमारी आत्मा के दो टुकड़े हो जाते हैं? क्या आत्मा किसी दिशा में खिसक जाती है? बिल्कुल नहीं।
3. **विज्ञान के नियम (Laws of Nature) :** विज्ञान कहता है कि गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of Gravity) पूरे ब्रह्मांड में काम कर रहा है। वह पृथ्वी पर सेब को नीचे गिरा रहा है और अंतरिक्ष में चंद्रमा को अपनी कक्षा में घुमा रहा है। नियम हर जगह अलग-अलग द्रव्यमान (mass) पर अलग-अलग दिशाओं में बल लगा रहा है। लेकिन 'नियम' स्वयं निराकार है, इसलिए वह न तो खिसकता है, न बदलता है। ईश्वर तो इन नियमों का भी विधाता है। सृष्टि के ये सारे नियम अथवा सृष्टिक्रम वास्तव में ईश्वर के ज्ञान और उसकी व्यवस्था का ही नाम हैं। ईश्वर उन्हीं सारे नियम अथवा सृष्टिक्रम और व्यवस्था का विधाता है; क्योंकि नियम नियामक को सिद्ध करता है। व्यवस्था व्यवस्थापक की साक्षी देती है।

इसलिए ईश्वर पदार्थों में भौतिक रूप से धक्का देकर कार्य नहीं करता, बल्कि अपनी सर्वज्ञता और सर्वशक्ति के द्वारा संपूर्ण व्यवस्था को संचालित करता है। अतः ईश्वर के विषय में "वह इस दिशा में बल लगा रहा है, इसलिए उस ओर खिसक रहा होगा" जैसी धारणा लागू नहीं होती।

तीसरी शंका :

यदि एक ही समय में ईश्वर दो भिन्न कार्य कर रहा हो तो? मान लीजिए किसी स्थान पर एक मनुष्य की मृत्यु हो रही है। उसी समय किसी अन्य स्थान पर किसी माता के गर्भ में एक जीवात्मा के लिए शरीर-निर्माण की प्रक्रिया चल रही है। यदि ईश्वर दोनों घटनाओं का नियमन कर रहा है, तो एक स्थान पर उसका संबंध मृत्यु से है और दूसरे स्थान पर जन्म से। क्या यह दो अलग-अलग अवस्थाएं नहीं हैं? क्या इससे ईश्वर में दो भेद नहीं सिद्ध हो जाते? यह शंका पहली दृष्टि में अत्यंत प्रबल प्रतीत होती है।

तीसरी शंका का समाधान :

1. **कार्यों का भेद कर्ता का भेद नहीं होता :** सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि कार्यों की भिन्नता से कर्ता की भिन्नता अनिवार्य रूप से सिद्ध नहीं होती। एक मनुष्य एक ही समय में आंखों से देख सकता है, कानों से सुन सकता है, मन में विचार कर सकता है और हाथों से कोई कार्य भी कर सकता है। क्रियाएं अनेक हैं, पर आत्मा एक ही है। यद्यपि यह उदाहरण सीमित है, फिर भी यह दिखाता है कि विविध क्रियाओं का होना अनिवार्यतः अनेक कर्ताओं का होना नहीं सिद्ध करता।
2. **ईश्वर का ज्ञान खण्डों में कार्य नहीं करता :** मनुष्य का ज्ञान सीमित है। वह एक समय में कुछ ही बातों पर ध्यान दे सकता है। इसलिए उसे लगता है कि यदि दो अलग-अलग कार्य हो रहे हैं, तो दो अलग-अलग ध्यान या दो अलग-अलग चेतन केन्द्र होने चाहिए। किन्तु वेदों के अनुसार ईश्वर का ज्ञान अनंत (**'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्'** - योगदर्शन 1.25) और अखंड है। वह किसी घटना को जानने के लिए अलग से ध्यान नहीं लगाता। संपूर्ण ब्रह्मांड उसके लिए सदा प्रत्यक्ष है - **'अन्यो अभि चाकशीति'** (ऋग्वेद 1.164.20)। उसे न किसी विषय की खोज करनी पड़ती है और न किसी नई जानकारी को प्राप्त करना पड़ता है। इसलिए उसके लिए जन्म और मृत्यु, निर्माण और विनाश, ग्रहों की गति और जीवों के कर्म - सब एक साथ ज्ञात हैं – **'स वेत्ति विश्वं'** – श्वेताश्वतर उपनिषद् 3.19)।
3. **भेद तभी होगा जब ईश्वर में भाग हों :** यदि कोई कहे कि ईश्वर का एक भाग जन्म का कार्य कर रहा है और दूसरा भाग मृत्यु का, तो पहले यह सिद्ध करना पड़ेगा कि ईश्वर में भाग हैं। परन्तु वैदिक सिद्धांत के अनुसार ईश्वर निरवयव है। जहां भाग ही नहीं हैं, वहां "एक भाग यह कर रहा है और दूसरा भाग वह" कहना तार्किक रूप से असंगत हो जाता है। अतः विभिन्न कार्यों के आधार पर ईश्वर में आन्तरिक विभाजन सिद्ध नहीं किया जा सकता।

ऋग्वेद (1.89.10) में ईश्वर को **'अदिति'** इसलिए कहा गया है, क्योंकि वह - खण्डित नहीं होता, विभाजित नहीं किया जा सकता, किसी सीमा में बँधा नहीं है, सर्वव्यापक होते हुए भी अखंड है और समस्त जगत् का आधार और नियन्ता है।

इस प्रकार 'अदिति' नाम ईश्वर के अखंडत्व, अविभाज्यता और अनंत व्यापकता का द्योतक है। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में यह शब्द ईश्वर के एक अत्यंत सार्थक नाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वेदों में अनेक स्थानों पर इसी 'अदिति' ईश्वर को **'शतक्रतो'** अर्थात् असंख्यात कर्मों का करनेवाला भी कहा गया है; जैसे कि – ऋग्वेद 8.98.11 में।

4. **वास्तविक भेद कहां है? :** यहां एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात समझने योग्य है। जन्म और मृत्यु में भेद है। निर्माण और विनाश में भेद है। एक घटना और दूसरी घटना में भेद है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उन सबको जानने वाली सत्ता में भी भेद है। उदाहरण के लिए, एक ही सूर्य का प्रकाश गंगा पर भी पड़ता है और नाले पर भी। गंगा और नाले में भेद है, प्रकाश में नहीं। इसी प्रकार जन्म और मृत्यु में भेद है, किन्तु ईश्वर की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता में कोई भेद नहीं है।
5. **क्या अनेक विषयों का ज्ञान होने से ज्ञान अनेक हो जाता है? :** इस शंका को एक अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है : यदि ईश्वर एक साथ लाखों घटनाओं को जानता है, तो क्या उसका ज्ञान लाखों भागों में विभक्त हो जाता है? स्पष्टतः नहीं। एक गणितज्ञ को यदि एक साथ अनेक गणितीय सत्य ज्ञात हों, तो इससे उसका ज्ञान अनेक टुकड़ों में नहीं बंट जाता। उसी प्रकार ईश्वर के ज्ञान का विषय भले ही अनंत हो, पर उसका ज्ञान एक और अखंड है।
6. **ईश्वर का अपरिवर्तनशील रहना कैसे सम्भव है? :** किसी को यह लग सकता है कि यदि ईश्वर निरन्तर कार्य कर रहा है, तो उसमें परिवर्तन अवश्य होना चाहिए। किन्तु क्रियाशीलता और परिवर्तनशीलता एक ही बात नहीं हैं। ईश्वर की शक्ति, ज्ञान और सामर्थ्य नित्य हैं। किसी कार्य के सम्पन्न होने से उनमें न वृद्धि होती है, न कमी। ईश्वर संसार का नियमन करता है, परन्तु ऐसा करते समय उसके स्वरूप में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। वह जन्म-मरण, सृष्टि-प्रलय, कर्मफल-वितरण आदि समस्त व्यवस्थाओं का नियन्ता होते हुए भी अपने स्वरूप में सदैव एकरस और अपरिवर्तनशील रहता है।

7. **एकरस और क्रियाशील में कोई विरोध नहीं :** संसार में हम देखते हैं कि जिस जड़ पदार्थ में क्रिया या रूपांतरण होता है, उसका स्वरूप बदल जाता है - जैसे आंतरिक परमाणुओं की गति और बाहरी निमित्त से दूध का दही के रूप में बदल जाना। परंतु ईश्वर के विषय में ऐसा नहीं है। ईश्वर स्वयं को संसार के रूप में नहीं बदलता क्योंकि वह परिणामी उपादान-कारण (Material Cause – Raw Material - कच्चा माल) नहीं है, बल्कि वह जड़ प्रकृति के परमाणुओं में गति पैदा करने वाला चेतन निमित्त-कारण (Efficient or Agental Cause) है। हमें उपादान और निमित्त कारण को भी ठीक से समझना होगा।

   - **उपादान-कारण (Material Cause) :** जिससे वस्तु बनती है, जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है। यहाँ मिट्टी बदल कर घड़ा बन गई, इसलिए मिट्टी अपरिवर्तनशील नहीं रही।
   - **निमित्त-कारण (Efficient or Agental Cause) :** जो वस्तु को बनाता है, जैसे कुम्हार। कुम्हार ने मिट्टी से घड़ा बना दिया, लेकिन घड़ा बनने के बाद भी कुम्हार का अपना शरीर और अस्तित्व वैसा ही रहता है, वह घड़े में नहीं बदल जाता।

   ईश्वर इस सृष्टि का निमित्त-कारण है। वह मूल प्रकृति (जड़ परमाणु) पर अपने ज्ञान और सामर्थ्य से क्रिया करता है। प्रकृति बदलती है, रूप बदलती है, संसार बनता और बिगड़ता है - परंतु बनाने वाला ईश्वर वैसा का वैसा ही एकरस रहता है। उसकी शक्ति, उसका ज्ञान और उसका आनंद कभी कम या ज्यादा नहीं होता। उसके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता।

निष्कर्ष : वैदिक समाधान का सार

वेदों, वैदिक दर्शन, स्वामी दयानंद और आर्य समाज के सिद्धांतों के अनुसार :

1. **स्थान भेद से ईश्वर में भेद नहीं होता :** क्योंकि ईश्वर अखंड और सर्वव्यापक है। जैसे एक ही सूर्य का प्रकाश देश के करोड़ों घरों में एक साथ पड़ता है और हर घर

की परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग प्रभाव (कहीं सुखाना, कहीं गर्माहट देना) डालता है, फिर भी सूर्य का प्रकाश एक ही रहता है; वैसे ही एक ही ईश्वर सब जगह उपस्थित रहकर अपनी न्याय-व्यवस्था के अनुसार अलग-अलग जीवों के लिए अलग-अलग कार्य करता है।

2. **ईश्वर में कोई विस्थापन (Displacement or Movement – खिसकना) नहीं होता :** क्योंकि बल लगाने के लिए उसे कहीं से गति करके नहीं आना पड़ता। वह पहले से ही उस पदार्थ के भीतर और बाहर अंतर्यामी रूप में व्याप्त है। उसका बल ज्ञानमय संकल्प (ईक्षण) है, भौतिक धक्का नहीं।

अतः ईश्वर का एकरस, अपरिवर्तनशील होना और उसी समय उसका संपूर्ण ब्रह्मांड में अनंत क्रियाएं करना - इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। वह अपनी अचल, अखंड और अनंत सत्ता में स्थिर रहते हुए भी अपनी अचिन्त्य शक्ति से इस सृष्टि का पालन, पोषण और संहार अत्यंत सुचारू रूप से कर रहा है।

वेदों और महर्षि दयानंद सरस्वती के सिद्धांतों के अनुसार ईश्वर को समझने में सबसे बड़ी कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब हम उसकी तुलना किसी भौतिक वस्तु या सीमित जीव से करने लगते हैं। परन्तु ईश्वर न तो शरीरधारी है, न अवयवों वाला है, न किसी स्थान-विशेष तक सीमित है और न ही उसका ज्ञान खण्डों में कार्य करता है। वह एक अखंड, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् चेतन सत्ता है। इसलिए यदि एक ही समय में कहीं किसी जीव की मृत्यु हो रही है, कहीं किसी गर्भ में शरीर का निर्माण हो रहा है, कहीं ग्रह अपनी गति कर रहे हैं और कहीं किसी जीव को उसके कर्मों का फल प्राप्त हो रहा है, तो इन सब विविध घटनाओं का नियमन करने पर भी ईश्वर अनेक भागों में विभाजित नहीं होता। विविधता जगत् में है, घटनाओं में है, पदार्थों में है; परन्तु उन सबका ज्ञाता, नियन्ता और आधारभूत चेतन तत्त्व ईश्वर एक ही, अखंड और अपरिवर्तनशील है। यही वैदिक दर्शन का निष्कर्ष है।

हमारे जैसे सामान्य लोगों के लिए अचल, कूटस्थ, अनंत, अपरिणामी, अपरिवर्तनशील, सर्वव्यापक, चेतन ईश्वर अपना बल कैसे लगाता है ? - इसे ठीक-ठीक समझना

(conceptualization करना) – अवधारणा बनाना - सामान्यत: अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। संभवत: इसीलिए अतः कई बार कह दिया जाता है कि ईश्वर बल “लगाता” नहीं है, बल्कि ईश्वर का होना ही परम् बल है – **“बलमसि”** (यजुर्वेद 19.9) - वह बल-स्वरूप है। उपनिषत्कार ने श्वेताश्वतर उपनिषद् (6.8) में उसके अनंत ज्ञान, अनंत बल और अनंत क्रिया को स्वाभाविक अथवा सहज कहा है - **“स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च”**। उसके इसी अचल और सर्वव्यापक प्रभाव को इसी उपनिषद् (3.19) में **“अपाणिपादो जवनो ग्रहीता”** - बिना हाथ-पैर के भी सब कुछ करने वाला - वर्णित किया है; और यह भी स्पष्ट किया है कि – **“स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता”** अर्थात् वह सब जगत् को जानता है, परन्तु उसको अवधिसहित (comprehensively or in His entirety) जाननेवाला कोई नहीं है। ऐसे **‘चित्रं’** (यजुर्वेद 7.42) अर्थात् अद्भुत स्वरूप, आश्चर्य स्वरूप और परम अलौकिक परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार तो केवल योगीजनों को असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में होता है। जब तक हमारी आध्यात्मिक भूमिका और पात्रता इतनी उच्च नहीं हो जाती, तब तक वेदादि सत्य शास्त्रों के शब्द-प्रमाण तथा अनुमान-प्रमाण - तर्क और ऊहा - आदि के माध्यम से ही हमें परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को यथासंभव जानने-समझने का श्रद्धापूर्वक निरंतर पुरुषार्थ करना होगा। इससे भिन्न अन्य कोई मार्ग नहीं है। (03.06.2026)

* * *